हिंदी की पीड़ा

भारत की यह भाषाई विडंबना है कि हम अपनी हर चीज को तथ्यहीन बताते हुए नहीं अघाते। शायद यह ८०० वर्षों की गुलामी से उपजी हीनता-बोध का सूचक है। इसी हीनता-बोध का परिणाम है- संस्कृत जो पंडितों की भाषा मानी जाती थीं, उसे जाति से जोड़ दिया जाना, फिर एक विदेशी भाषा जो इस्लाम से संबंधित नहीं थी, फिर भी उसे तुर्क और मुग़लों ने अपनी ग़ुलाम आबादी पर शान से थोपा, फिर क़िसी मूढ़ ने हिंदी के ही एक रूप उर्दू को धर्म से जोड़ दिया। बाद में इस देश की समावेशी संस्कृति की भाषा हिंदी को विभाजनक़ारी, उत्तर और दक्षिण के षडचंत्र में बाँधने का दीर्घ षडचंत्र चलाया गया। इन षडचंत्रकारियों के लिए शेष चीजों में तो आधुनिक भारत का संविधान अहम् है पर हिंदी के मामले में यह गौण हो जाता है।

बाद में भी इन्हीं कुप्रयासों के तहत हिंदी को अज्ञानता का प्रतीक और अंग्रेज़ी को ज्ञान का प्रतीक बनाने का प्रयास चलता रहा। सब कुछ होते हुए भी हिंदी इन तथ्यहीन लोगों के जाल में उलझी रही। दुर्भाग्य से इस देश में अंग्रेज़ी के वर्चस्व को बनाए रखने के लिए तथ्यहीनता का साम्राज्य खड़ा किया गया। मुझे तो लगता है अब समय आ गया है कि भाषाई प्रेमियों से एक विनम्र अनुरोध किया जाए कि 'भारतीय जनमानस के एक बड़े वर्ग द्वारा अंग्रेज़ी के नाम पर जो भ्रम जाल फैलाया गया है और हिंदी के नाम पर मातृभाषा, आठवीं अनुसूची और हिंदी मात्र उत्तर भारत की भाषा है आदि भ्रांतियां जो फैलाई गई उस पर एक तथ्यात्मक शोध हो, क्योंकि अंग्रेज़ी समर्थक और मीडिया तो भारतीय भाषाओं को तथ्यहीन साबित करने के लिए पूरी ऊर्जा लगा देते है।'
तभी इस देश से अंग्रेजजियत का नाश होगा, क्योंकि तब लोग खुद स्वदेशी आंदोलन की भाँति स्वभाषा के समर्थन में खड़े होंगे।